



राम चरित मानस में विधि के शासन की अवधारणा

श्याम शंकर उपाध्याय
पूर्व जनपद एवं सत्र न्यायाधीश/
पूर्व विधिक परामर्शदाता मा0 राज्यपाल
उत्तर प्रदेश, राजभवन
लखनऊ।
मो0- 9453048988
ई-मेल: ssupadhyay28@gmail.com

1. सभ्य मानव समाज के सम्पूर्ण इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य सहज रूप से स्पष्ट होता है कि व्यवस्थित व सभ्य मानव समाज एवं विधि के शासन की अवधारणा साथ-साथ अस्तित्व में आये हैं। इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि व्यवस्थित मानव समाज की उत्पत्ति का प्रमुख कारक विधि का शासन (rule of law) ही रहा है। भारतीय संदर्भों में यदि देखा जाए तो प्राचीन ऋग्वैदिक काल से ही भारतीय समाज 'धर्म' अथवा 'विधि' से शासित होता आया है। भारतीय समाज संरचना एवं समाज-संचालन की दृष्टि से 'धर्म' का अर्थ वर्तमान में प्रचलित धार्मिक क्रिया-कलापों से नहीं रहा है अपितु 'धर्म' बड़े ही व्यापक अर्थों एवं सन्दर्भों में देखा जाता रहा है। भारतीय मनीषियों एवं समाजशास्त्रियों के चिन्तन में 'धर्म' को 'विधि' का ही पर्याय माना जाता रहा है। महाराज मनु ने भी मनुस्मृति में 'धर्म' को ही 'दण्ड' अथवा 'दण्ड' को ही 'धर्म' कहते हुए धर्म और दण्ड की महत्ता इस प्रकार व्यक्त की है : **दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति, दण्डः सुप्तेषुजागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः** जिसका अर्थ है कि दण्ड अर्थात् धर्म ही राजा सहित प्रजा पर शासन करता है, दण्ड/धर्म ही सभी की रक्षा करता है, सभी के सो जाने पर भी दण्ड/धर्म ही जागता रहता है, इसीलिए विद्वानों ने धर्म को ही दण्ड कहा है। दूसरे शब्दों में धर्म ही समाज का नियमन करता रहा है और इसीलिए धर्म और उसके सिद्धान्त अथवा सूत्र समाज में व्यवस्था बनाए रखने के आशय से विधि की भांति मान्य एवं अनुसरणीय रहे हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार '**धर्मेण धार्यते लोकः**' की अवधारणा ही समाज की व्यवस्थाओं के संचालन की दृष्टि से मार्ग-दर्शक सूत्र था। इसीलिए भारतीय समाजशास्त्रियों का मत था कि '**धर्मेण शासिते राष्ट्रे न च बाधा प्रवर्तते**' जिसका आशय है कि धर्म अर्थात् विधि से शासित राष्ट्र अथवा समाज में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती है। वेदों एवं उपनिषदों के समय के वैदिक ऋषियों सहित उत्तरवर्ती काल के विभिन्न समाजशास्त्रियों यथा-नारद, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य, मनु, चाणक्य जैसे आचार्यों ने समय-समय पर समाज के मार्गदर्शन के लिए सिद्धान्त व सूत्र दिये जिनसे भारतीय समाज शासित होता रहा है। रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी मानस में विभिन्न स्थानों पर भगवान राम के समय में मान्य विभिन्न विधिक सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। रामकालीन भारतीय समाज के नियमन (regulation) से सम्बन्धित विभिन्न विधिक सिद्धान्त क्या थे और उनका रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा निरूपण किस प्रकार किया गया है, उसका संक्षिप्त उल्लेख आगे किया जा रहा है :
2. रामकालीन समाज में लोगों में परस्पर सम्बन्ध कैसे थे इसका उल्लेख मानस के उत्तरकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार किया है : '**सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुत नीती, चारिउ चरन धर्म जग माहीं, पूरि रहा सपनेहुं अघ नाहीं**' जिसका तात्पर्य है कि राम-राज्य में सभी लोग परस्पर प्रेम करते थे और धर्मसम्मत अर्थात् विधि द्वारा निर्धारित

मापदण्डों के अनुसार रहते हुए अपने-अपने कार्य का सम्पादन करते थे और जीवन के चारों चरणों अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ जीवन, वानप्रस्थ एवं सन्यास काल में सदैव धर्मसम्मत अर्थात् विधिसम्मत आचरण करते थे और स्वप्न में भी विधि का अतिक्रमण नहीं करते थे । राम जब अयोध्या से वन को जाने के लिए श्रृंगवेरपुर में गंगा तट पर पहुँचे तो भरत उन्हें मनाकर वापस अयोध्या लाने के लिए श्रृंगवेरपुर आये और तब राम ने भरत को उनके राज-धर्म का स्मरण कराते हुए उन्हें अयोध्या वापस लौट जाने और अपने राज-धर्म का पालन करने के लिए क्या कहा था, इसका उल्लेख मानस के अयोध्याकाण्ड में इस प्रकार आता है : **‘मोर तुम्हारे परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, परमार्थ, सुयश और धर्म इसी में है कि हम दोनों भाई राज्य और उसकी प्रजा की रक्षा और भलाई करें, इसलिए तुम वापस जाकर राजधर्म का पालन करते हुए राज्य, खजाना, परिवार, गुरु, माताओं, मन्त्रियों, पृथ्वी (पर्यावरण) सहित अपनी प्रजा और राजधानी की रक्षा करो और उनका पालन-पोषण करो ।**

भारत के संविधान के भाग 4 में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों का प्रावधान किया गया है । उसी तरह राम के काल में भी राजा और राज्य के लिए नीति निर्देशक सिद्धान्त थे जिनका वर्णन मानस के अयोध्याकाण्ड में करते हुए कहा गया है कि राजा अथवा शासक के लिए वन जैसा भू-भाग भी उसका पवित्र देश है, विवेक उसका राजा अथवा स्वामी है और वैराग्य अर्थात् निरपेक्षता अथवा पक्षपातहीनता उसका मन्त्री है, यम (अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) और नियम (अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्राणिधान) उसके योद्धा हैं, शान्ति तथा सद्बुद्धि उसकी सुन्दर व पवित्र रानियाँ हैं । राज्य के पर्यावरण, पशु-पक्षियों का संरक्षण, विद्वानों का पोषण राजा का दायित्व है । उपरोक्त नीतिगत सिद्धान्तों को अपने शासन का मार्गदर्शक सूत्र मानने वाला राजा राज्य के सात अंगों 1. राजा 2. मंत्री 3. मित्रगण 4. खजाना 5. राष्ट्र, 6 किला 7. सेना की रक्षा व संवर्द्धन करने में सफल रहता है ।

3. रामकालीन समाज में दण्ड-व्यवस्था कैसी थी, इस पर मानस के उत्तरकाण्ड का यह दोहा अवलोकनीय है : **‘दंड जतिन्ह कर भेद जँह नर्तक नृत्य समाज, जीतहुं मनहि सुनिय अस रामचंद्र के राज’** जिसका अर्थ है कि श्री राम के राज्य में दण्ड देना केवल सन्यासियों के हाथों में था जिसका तात्पर्य है कि किसी को दण्ड देने का अधिकार केवल ऐसे व्यक्ति को प्राप्त था जो राग-द्वेष व पक्षपात आदि मानवीय कमजोरियों से ऊपर उठ चुका हो और विशुद्ध न्याय की दृष्टि से दण्ड की मात्रा का निर्धारण करके दण्ड दे पाने के योग्य हो । चूँकि तत्समय समाज में लोग अपराध करते ही नहीं थे इसलिए अपराधियों, चोरों व डाकुओं आदि जैसे विधि-विरुद्ध कृत्य करने वालों को साम, दाम, दण्ड, भेद जैसे उपायों का प्रयोग करते हुए उन्हें पकड़ने, उन पर मुकदमा चलाने और उन्हें दण्ड देने की आवश्यकता ही नहीं होती थी । बिना अपराध के प्रजा को अनुचित रूप से दण्ड देने वाले राजा को पापकर्मी कहकर कोसते हुए गोस्वामी जी ने उत्तरकाण्ड में इस प्रकार कहा है : **‘नृप पाप परायण धर्म नहीं, करि दंड विडंब प्रजा नितहीं’ ।**
4. बालि द्वारा अपने छोटे भाई सुग्रीव की पत्नी को बलपूर्वक छीन कर अपने अधीन रख लेने की शिकायत सुग्रीव से मिलने पर राम जब बालि को मृत्यु-दण्ड देते हैं तो बालि राम से अपने मारे जाने का कारण पूछते हुए कहता है : **‘मैं बैरी सुग्रीव पियारा, अवगुन कवन नाथ मोहिं मारा’ ।** तब बालि को मृत्यु-दण्ड दिये जाने का कारण बताते हुए राम उससे उस समय प्रचलित दण्ड

व्यवस्था का उल्लेख करते हुए कहते हैं : 'अनुज वधू भगिनी सुत नारी, सुनु सठ कन्या सम ए चारी, इन्हिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई' जिसका अर्थ है कि हे मूर्ख बालि ! सुन, छोटे भाई की पत्नी, बहिन, पुत्रवधू और बेटी, ये चारों समान होती हैं और जो इनको बुरी दृष्टि से देखता है उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता है । उक्त दृष्टान्त से स्पष्ट होता है कि आधुनिक समय में मान्य दण्ड-शास्त्र के दण्डात्मक एवं निरोधात्मक सिद्धान्त (punitive & deterrent theories) रामकालीन समाज में भी प्रचलित थे । अशिष्ट एवं लोकहित के विपरीत कार्य करने वालों को दण्ड देने का भय दिखाकर भी किस प्रकार सुधारा जा सकता था और उनसे लोकहित के कार्य करवाये जा सकते थे, इसका जीवन्त चित्रण सुन्दरकाण्ड के उस प्रसंग से मिलता है जहाँ बार-बार विनती करने पर भी जब समुद्र ने श्रीराम की सेना को समुद्र के पार लंका जाने के लिए मार्ग नहीं दिया और तब श्रीराम के द्वारा अपने धनुष पर बाण तानकर समुद्र को सुखा देने की चेतावनी देने मात्र से समुद्र भयभीत हो गया और श्रीराम को सुझाव दिया कि समुद्र के उस पार लंका तक जाने के लिए नल-नील के माध्यम से समुद्र में पत्थर डालकर पुल बना लिया जावे । उक्त प्रसंग से सम्बन्धित सुन्दरकाण्ड का दोहा 'विनय न मानत जलधि जड़ गये तीन दिन बीति, बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति' वस्तुतः दुष्ट को वास्तविक दण्ड देने से पूर्व अन्य उपायों के द्वारा भी उसमें सुधार लाने के लिए दण्ड-विधि के निरोधात्मक व सुधारात्मक सिद्धान्तों (preventive & reformative theories) की ओर इंगित करता है ।

5. जिस प्रकार आधुनिक समाज में बच्चों में अच्छे संस्कार व अच्छी आदतें डालने का दायित्व माता-पिता सहित बड़े भाई व शिक्षक आदि पर होता है उसी प्रकार राम-राज्य में भी था । उत्तरकाण्ड का यह नीति वाक्य दृष्टव्य है : 'राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती, नाना भौति सिखावहि नीती' जिसका तात्पर्य है कि श्री राम के चारों भाइयों में न केवल परस्पर प्रेम व एक-दूसरे के प्रति आदर भाव था अपितु बड़ा भाई होने के कारण राम अपने छोटे भाइयों को समस्त प्रकार की नीतियाँ अर्थात् विधि आदि की जानकारियाँ करवाते रहते थे ।
6. 'भारत के संविधान' का अनुच्छेद 14 समानता सम्बन्धी मौलिक अधिकार और अनुच्छेद 19(1)(क) अभिव्यक्ति के मौलिक अधिकार की गारण्टी देता है । रामकालीन समाज में लोगों को समानता और अभिव्यक्ति सम्बन्धी अधिकार किस सीमा तक प्राप्त था और समाज कितना लोकतांत्रिक था इसका परिचय मानस के उत्तरकाण्ड की इन पंक्तियों से सहज ही मिल जाता है : 'सुनुहु सकल पुरजन मम बानी, कहहुँ न कछु ममता उर आनी, नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई, सुनुहु करहु जो तुम्हहि सोहाई, जाँ अनीति कछु भाषौं भाई, तौ मोहि बरजहु भय बिसराई' जिसका अर्थ है कि हे नगरवासियों ! मेरी बात आप सब सुनिए अवश्य, परन्तु आप सब पूरी स्वतंत्रता से वह सब कुछ कहें जो आप कहना चाहते हैं और यदि मैं भी कोई बात ऐसी कहूँ जो नीतिसम्मत अर्थात् विधिसम्मत नहीं हो तो बिना कोई संकोच और भय के आप सब मेरे मत के विरुद्ध अपनी बात अवश्य कहें और नीति विरुद्ध व विधि विरुद्ध कुछ भी कहने और करने से मुझे रोक दें । विश्व की दूसरी तमाम सभ्यताओं में किसी राजा द्वारा अपनी प्रजा को अभिव्यक्ति आदि की इतनी स्वतंत्रता और अपने बराबर अधिकार देने का कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता है । रावण द्वारा सीता का अपहरण कर लिए जाने के बाद सर्वज्ञ होने के कारण यह जानते हुए भी कि रावण सीता को ले जाकर कहां छुपाया है, राम राजनीति की मर्यादा की रक्षा करते हैं और सीता का पता लगाने के लिए वानरों को जहाँ-तहाँ भेजते हैं जिसका वर्णन किष्किन्धाकाण्ड में तुलसीदास जी ने इस प्रकार किया है : 'जद्यपि प्रभु जानत सब बाता, राजनीति राखत सुरत्राता ।'

7. वर्तमान भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code) की धाराएं 494 से 498 पति अथवा पत्नी के रहते हुए दूसरे पति अथवा पत्नी से विवाह करने अथवा पति-पत्नी जैसा सम्बन्ध रखने को वर्जित करती हैं । मानस के अरण्यकाण्ड में इस प्रकार के जारजकर्म अथवा अवैध यौन सम्बन्ध की निन्दा करते हुए उसे इस प्रकार अमान्य घोषित किया गया है : **‘एकइ धर्म एक व्रत नेमा, काय वचन मन पति पद प्रेमा, उत्तम के अस वश मन माहीं, सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं, मध्यम परपति देखइ कैसे, भ्राता पिता पुत्र निज जैसे, धर्म विचारि समुझि कुल रहई, सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई, पति वंचक परपति रति करई, रौरव नरक कल्प सत परई ।’**
8. नौकरी पेशा वाले लोक सेवकों जिन्हें अपनी सेवा नियमावली तथा आचरण नियमावली से बंधे रहकर कार्य करना होता है, का काम अर्थात् सेवा-धर्म कितना कठिन होता है, इसे अयोध्याकाण्ड में इस प्रकार निरूपित किया गया है : **‘आगम निगम प्रसिद्ध पुराना, सेवाधरमु कठिन जग जाना, स्वामि धरम स्वारथहि विरोधू, बैरु अन्ध प्रेमहि न प्रबोधू’** जिसका तात्पर्य है कि शास्त्र सहित सम्पूर्ण संसार जानता है कि सेवा-धर्म (नौकरी) बड़ा कठिन धर्म है । अपने कर्त्तव्य का पालन करना और अपने अनुचित स्वार्थ की पूर्ति भी करना परस्पर विरोधी अवधारणाएं हैं जिनकी पूर्ति एक साथ नहीं हो सकती है जैसे बैर अन्धा होता है और प्रेम को ज्ञान नहीं होता है, इसलिए **‘सबते सेवकधरम कठोरा’** कहा गया है अर्थात् सेवाधर्म (नौकरी करना) अत्यन्त ही कठिन धर्म है जिसका पालन विरले ही कर पाते हैं ।
9. राम से युद्ध करने का निर्णय लेने से पूर्व रावण ने जब अपने सचिवों (मंत्रियों) से परामर्श मांगा तब उसके कपटी सचिवों ने उसके हित की चिन्ता करने के बजाय उसके मन को अच्छा लगने वाला अहितकर परामर्श देते हुए कहा कि जब आपने देवताओं और राक्षसों को जीत लिया तो राम आदि जैसे मनुष्य और हनुमान आदि जैसे वानर किस गिनती में हैं । मूर्ख सचिवों द्वारा राजा रावण को दिये गये उक्त गलत परामर्श पर तंज कसते हुए और राजाओं/शासकों को सावधान करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी का मत देखिए : **‘सचिव बैद गुर तीनि जाँ प्रिय बोलहिं भय आस, राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास’** जिसका अर्थ है कि यदि राजा के सचिव, वैद्य और गुरु राजा के नाराज हो जाने के डर से अथवा किसी लाभ की आशा से राजा के हित की बात न कहकर उसे प्रिय लगने वाला परामर्श देते हैं तो शीघ्र ही राज्य, शरीर और धर्म का नाश हो जाता है ।

इस प्रकार रामचरितमानस के विभिन्न प्रसंगों में रामकालीन शासन व्यवस्था, विधि व दण्ड व्यवस्था आदि सहित राज्य के शासन की दृष्टि से नीति-निर्देशक तत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं जिनमें से कई आधुनिक समय की विभिन्न शासन व्यवस्थाओं द्वारा मान्य विधिक व्यवस्था व राज्य के संचालन हेतु मान्य नीति-निर्देशक सिद्धान्तों की ही भांति हैं ।
